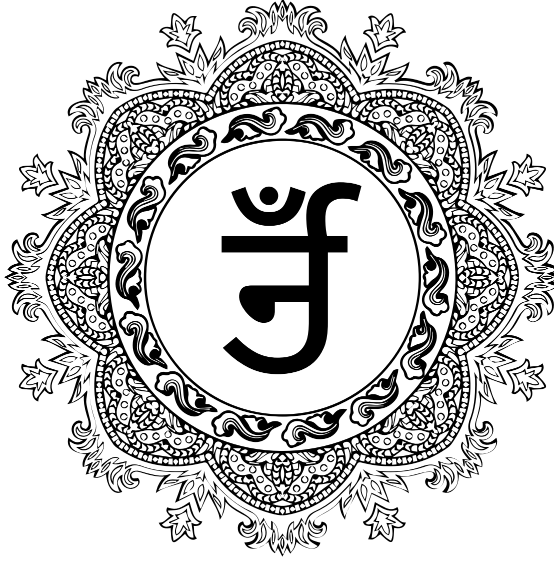


लघु नयचक्र

श्रीमद् देवसेनाचार्य



लघु नयचक्र

श्रीमद् देवसेनाचार्य

श्री देवसेनाचार्य

देवसेन नाम के कई आचार्यों के उल्लेख मिलते हैं। एक देवसेन वे हैं जिन्होंने विक्रम सं. 990 में दर्शन सार नामक ग्रंथ की रचना की थी। आलाप पद्धति, लघु नयचक्र, आराधना सार और तत्त्वसार नामक ग्रंथ भी आचार्य देवसेन के द्वारा रचित हैं। इन सब ग्रंथों को दर्शन सार के रचयिता देव सेन की कृति माना जाता है। इनका बनाया हुआ एक भाव संग्रह नाम का ग्रंथ है । उसमें वे अपने विषय में इस प्रकार कहते है-

सिरिविमलसेण गणहरसिस्सो णामेण देवसेणुत्ति ।
अबुहजणबोहणत्थं तेणेयं विरइयं सुतं ॥

इससे मालूम होता है कि इनके गुरु का नाम श्री विमलसेन गणधर (गणी) था। दर्शनसार नामक ग्रंथ के अंत में वे अपना परिचय देते हुए लिखते हैं :-

पुव्वायरियकराइं गाहाइं संचिऊण एयत्थ ।
सिरिदेवसेणगणिणा धाराए संवसंतेण ॥49॥
रइओ दंसणसारो हारो भव्वाण णवसए नवए ।
सिरिपासणाहगेहे सुविसुद्धे माहसुद्धदसमीए ॥50॥

अर्थात् पूर्वाचार्यों की रची हुई गाथाओं को एक जगह संचित करके श्रीदेवसेन गणि ने धारा नगरी में निवास करते हुए पार्श्वनाथ के मंदिर में माघ सुदी दशवी विक्रम संवत् 990 को यह दर्शनसार नामक ग्रंथ रचा। इससे निश्चय हो जाता है कि उनका अस्तित्व काल विक्रम की दसवीं शताब्दी है। अपने अन्य किसी ग्रंथ में उन्होंने ग्रंथ रचना का समय नहीं दिया है।

यद्यपि इनके किसी ग्रंथ में इस विषय का उल्लेख नहीं है कि वे किस संघ के आचार्य थे, परंतु दर्शनसार के पढ़ने से पह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे मूलसंघ के आचार्य थे। दर्शनसार में उन्होंने काष्ठासंघ, माथुरसंघ और यापनीयसंघ आदि सभी दिगम्बर संघों की उत्पत्ति बतलाई है और उन्हें मिथ्यात्वी कहा है परंतु मूलसंघ के विषय में कुछ नहीं कहा है। अर्थात् उनके विश्वास के अनुसार यही मूल से चला आया हुआ असली संघ है ।

दर्शनसार की 43 वीं गाथा में लिखा है कि यदि आचार्य पद्मनन्दि (कुन्दकुन्द) सीमन्धर स्वामी द्वारा प्राप्त दिव्यज्ञान के द्वारा बोध न देते तो मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते। इससे यह भी निश्चय हो जाता है कि वे श्री कुन्दकुन्दाचार्य की आम्नाय में थे।

॥ वीतरागाय नमः ॥

श्रीमद् देवसेनाचार्य प्रणीत

लघु नयचक्र

वीरं विसयविरत्तं विगयमलं विमलणाणसंजुत्तं।
पणविवि वीरजिणिंदं पच्छा णयलक्खणं वोच्छं ॥1॥

अर्थ- कर्मों को जीतने से वीर, विषयों से विरक्त, कर्ममल से रहित और निर्मल केवलज्ञान से युक्त महावीर जिनेन्द्र को नमस्कार करके पश्चात् नय का लक्षण कहूँगा।

जं णाणीण वियप्पं सुयभेयं वत्थुयंससंगहणं।
तं इह णयं पउत्तं णाणी पुण तेहि णाणेहिं ॥2॥

अर्थ- श्रुत ज्ञान के आश्रय को लिये हुए ज्ञानी का जो विकल्प वस्तु के अंश को ग्रहण करता है उसे नय कहते है। उस ज्ञान से जो युक्त होता है वह ज्ञानी है।

जह्मा ण णएण विणा होई णरस्स सियवायपडिवत्ती।
तह्मा सो बोहव्वो एअंतं हंतुकामेण ॥3॥

अर्थ- नय के बिना मनुष्य को स्याद्वाद का बोध नहीं हो सकता। इसलिए जो एकान्त का विरोध करना चाहता है उसको नय जानना चाहिए।

जह सद्धाणंमाई सम्मत्तं जह तवाइगुणणिलये।
धाओ वा एयरसं तह णयमलो अणेयंतो ॥4॥

अर्थ- जैसे शास्त्रों का मूल अकारादि वर्ण है, तप आदि गुणों के भण्डार साधु में सम्यक्त्व मूल है, धातुओं में मूल पारा है, वैसे ही अनेकान्त का मूल नय है।

तच्चं विस्सवियप्पं एयवियप्पेण साहए जो हु।
तस्स ण सिज्झइ वत्थु किह एयंतं पसोहेदि ॥5॥

अर्थ- तत्त्व तो नाना विकल्प रुप है उसे जो एक विकल्प के द्वारा सिद्ध करता है उसको वस्तु की सिद्धि नहीं होती। तब वह कैसे एकांत का साधन कर सकता है।

धम्मविहीणो सोक्खं तह्णाछेयं जलेण जह रहिदो।
तह इह वंछइ मूढो णयरहिओ दव्वणिच्छित्ती ॥6॥

अर्थ- जिस प्रकार कोई तृषातुर मूढ़ जल विना तृप्ति तथा धर्म विना सुख चाहता है। उसी प्रकार नय ज्ञान के विना द्रव्य के स्वरूप का निश्चय कोई अज्ञानी चाहता है।

जह ण विभुंजइ रज्जं राओ गिहभेयणेण परिहीणो।
तह झादा णायव्वो दवियणिछित्तीहिं परिहीणो ॥7॥

अर्थ- जिस प्रकार राजनीति को नहीं जानने वाला राजा, राज्य वैभव का भोग नहीं कर सकता है। ठीक उसी प्रकार द्रव्य के यथार्थ बोध से विहीन ध्याता ध्यान की प्राप्ति नहीं कर सकता है।

बुज्झहता जिणवयणं पच्छा णिजकज्जसंजुआ होह।
अहवा तंदुलरहियं पलालसंधूणणं सव्वं ॥8॥

अर्थ- भगवान् जिनेन्द्र के वचनों को जान कर पश्चात् निज कार्य में संयुक्त होना चाहिए। अन्यथा किया गया कार्य चावल रहित पलाल (भूसा) के ग्रहण के तुल्य है।

एअंतो एअणयो होइ अणेयंतमस्स सम्मूहो।
तं खलु णाणवियप्पं सम्मं मिच्छं च णायव्वं ॥9॥

अर्थ- एक नय को एकान्त कहते हैं और उसके समूह को अनेकान्त कहते हैं। यह ज्ञान का भेद है जो सम्यक् और मिथ्या दो रूप होता है।

जे णयदिठ्ठिविहीणा तेसिं ण हु वत्थुरूवउवलद्धि।
वत्थुसहावविहूणा सम्माइठ्ठी कहं हुंति ॥10॥

अर्थ- जो नयदृष्टि से विहीन है उन्हें वस्तु के स्वरुप का ज्ञान नहीं हो सकता और वस्तु के स्वरुप को न जानने वाले सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकते है?

दो चेव मूलिमणया भणिया दव्वत्थपज्जयत्थगया।
अण्णं असंखसंखा ते तब्भेया मुणेयव्वा ॥11॥

अर्थ- द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक ये दो ही मूल नय कहे गये है। अन्य असंख्यात संख्या को लिये हुए उन दोनों के ही भेद जानने चाहिए।

नैगम संगह ववहार तहय रिउसुत्त सद्द अभिरूढा।
एवंभूयो णवविह णयावि तह उवणया तिण्णि ॥12॥

अर्थ- नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरुढ़ और एवंभूत (इन सात नयों में द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक को मिलाने से) नौ नय हैं तथा तीन उपनय है।

दव्वत्थं दहभेयं छब्भेयं पज्जयत्थियं णेयं।
तिविहं च णेगमं तह दुविहं पुण संगहं तत्थ ॥13॥
ववहारं रिउसुत्तं दुवियप्पं सेसमाहु एक्केक्का ।
उत्ता इह णयभेया उपणयभेयावि पभणामो ॥14॥

अर्थ- द्रव्यार्थिक नय के दस, पर्यायार्थिक नय के छह, नैगम नय के तीन, संग्रह नय, व्यवहार और ऋजुसूत्र नय के दो-दो तथा शेष शब्द, समभिरुढ़ और एवंभूत नय एक एक रूप ही हैं। इस प्रकार नय के भेद कहे गये। उपनय के भेद आगे कहते हैं।

सब्भूयमसब्भूयं उवयरियं चेव दुविह सब्भूयं।
तिविहं पि असब्भूयं उवयरियं जाण तिविहं पि ॥15॥

अर्थ- उपनय तीन हैं- सद्भूत, असद्भूत और उपचरित। सद्भूत नय के दो भेद हैं, असद्भूत नय के तीन भेद हैं और उपचरित के भी तीन भेद हैं।

दव्वत्थिए य दव्वं पज्जायं पज्जयत्थिए विसयं।
सब्भूयासब्भूए उवयरिए च दुणवतियत्था ॥16॥

अर्थ- द्रव्यार्थिक नयों का विषय द्रव्य है और पर्यायार्थिक नयों का विषय पर्याय है। सद्भूत व्यवहारनय के अर्थ दो हैं, असद्भूत व्यवहार नय के अर्थ नौ है और उपचरितनय के अर्थ तीन हैं।

पज्जय गउणं किच्चा दव्वं पिय जोहु गिह्णए लोए।

सो दव्वत्थो भणिओ विवरीओ पज्जयत्थो दु ॥17॥

अर्थ- जो पर्याय को गौण करके द्रव्य को ग्रहण करता है उसे द्रव्यार्थिकनय कहते हैं और जो द्रव्य को गौण करके पर्याय को ग्रहण करता है उसे पर्यायार्थिक नय कहते हैं।

कम्माणं मज्झगयं जीवं जो गहइ सिद्धसंकासं।
भण्णइ सो सुद्धणओ खलु कम्मोवाहिणिरवेक्खो ॥18॥

अर्थ- जो कर्मों के मध्य में स्थित अर्थात् कर्मों से लिप्त जीव को सिद्धों के समान शुद्ध ग्रहण करता है उसे कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहते हैं।

उप्पादवयं गोणं किच्चा जो गहइ केवला सत्ता।
भण्णइ सो सुद्धणओ इह सत्तागाहओ समए ॥19॥

अर्थ- उत्पाद और व्यय को गौण करके जो केवल सत्ता को ग्रहण करता है उसे आगम में सत्ता ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कहते हैं।

गुणगुणियाइचउक्के अत्थे जो णो करेइ खलु भेयं।
सुद्धो सो दव्वत्थो भेदवियप्पेण णिरवेक्खो ॥20॥

अर्थ- गुण-गुणी आदि चतुष्करूप अर्थ में जो नय भेद नहीं करता है, वह भेद विकल्प निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

भावेसु राययादी सव्वे जीवंमि जो दु जंपेदि।
सोहु असुद्धो उत्तो कम्माणोवाहिसावेक्खो ॥21॥

अर्थ- जो सब रागादिभावों को जीव का कहता है या रागादिभावों को जीव कहता है वह कर्मोपाधि सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

उप्पादवयविमिस्सा सत्ता गहिऊण भणइ तिदयत्तं।
दव्वस्स एयसमये जो हु असुद्धो हवे विदिओ ॥22॥

अर्थ- जो नय उत्पाद व्यय के साथ मिली हुई सत्ता को ग्रहण करके द्रव्य को एक समय में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य रुप कहता है वह अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है।

भेदे सदि संबंधं गुणगुणियाईण कुणइ जो दव्वे।
सो वि असुद्धो दिठ्ठो सहिओ सो भेदकप्पेण ॥23॥

अर्थ- जो नय द्रव्य में गुण-गुणी आदि का भेद करके उनके साथ सम्बन्ध कराता है वह भेद कल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिक नय है, क्योंकि वह भेद कल्पना से सहित हैं।

णिस्सेससहावाणं अण्णयरूवेण दव्वदव्वेदि।
दव्वठवणो हि जो सो अण्णयदव्वत्थिओ भणिओ ॥24॥

अर्थ- समस्त स्वभावों में जो यह द्रव्य है इस प्रकार अन्वयरुप से द्रव्य की स्थापना करता है वह अन्वय द्रव्यार्थिक नय है।

सद्दव्वादिचउक्के संतं दव्वं खु गिह्णए जो हु।
णियदव्वादिसु गाही सो इयरो होइ विवरीयो ॥25॥

अर्थ- जो स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव में वर्तमान द्रव्य को ग्रहण करता है वह स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनय है। और जो पर द्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव में असत् द्रव्य को ग्रहण करता है वह पर द्रव्यादि ग्राहक द्रव्यार्थिक नय है।

गिह्णइ दव्वसहावं असुद्धसुद्धोपचारपरिचत्तं।
सो परमभावगाही णायव्वो सिद्धिकामेण ॥26॥

अर्थ- जो अशुद्ध, शुद्ध और उपचरित स्वभाव से रहित परमस्वभाव को ग्रहण करता है वह परमभाव ग्राही द्रव्यार्थिक नय है, उसे मोक्षेच्छुक भव्य को जानना चाहिए।

अक्कट्टिमा अणिहणा ससिसूराईण पज्जया गिह्णइ।
जो सो अणाइणिच्चो जिणभणिओ पज्जयत्थिणओ ॥27॥

अर्थ- जो अकृत्रिम और अनिधन अर्थात् अनादि अनन्त चन्द्रमा सूर्य आदि पर्यायों को ग्रहण करता है उसे जिन भगवान् ने अनादि नित्य पर्यायार्थिक नय कहा है।

कम्मक्खयादु पत्तो अविणासी जो हु कारणाभावे।
इदमेवमुच्चरंतो भण्णइ सो साइणिच्च णओ ॥28॥

अर्थ- जो पर्याय कर्मों के क्षय से उत्पन्न होने के कारण सादि है और विनाश का कारण न होने से अविनाशी है, ऐसी सादि नित्य पर्याय को ग्रहण करने वाला सादि नित्य पर्यायार्थिक नय है।

सत्ता अमुक्खरूवे उप्पादवयं हि गिह्णए जो हु।
सो दु सहाव अणिच्चो भण्णइ खलु सुद्धपज्जायो ॥29॥

अर्थ- जो सत्ता को गौण करके उत्पाद व्यय को ग्रहण करता है उसे अनित्य स्वभाव को ग्रहण करने वाला शुद्ध पर्यायार्थिक नय कहते है।

जो गहइ एक्कसमए उप्पायवयद्धुवत्तसंजुत्तं।
सो सब्भाव अणिच्चो असुद्धओ पज्जयत्थीओ णेओ ॥30॥

अर्थ- जो एक समय में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से युक्त पर्याय को ग्रहण करता है वह स्वभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय है।

देहीणं पज्जाया सुद्धा सिद्धाण भणइ सारित्था।
जो इह अणिच्च सुद्धो पज्जयगाही हवे स णओ ॥31॥

अर्थ- जो संसारी जीवों की पर्याय को सिद्धों के समान शुद्ध कहता है वह अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिक नय है।

भणइ अणिच्चाऽसुद्धा चइगइजीवाण पज्जया जो हु।
होइ विभाव अणिच्चो असुद्धओ पज्जयत्थिणओ ॥32॥

अर्थ- जो चार गतियों के जीवों की अनित्य अशुद्ध पर्याय का कथन करता है वह विभाव अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिक नय है।

णिव्वित्तदव्वकिरिया वट्टणकाले दु जं समाचरणं।
तं भूयणइगमणयं जह अड णिव्वुइदिणं वीरे ॥33॥

अर्थ- जो कार्य हो चुका उसका वर्तमान काल में आरोप करना भूत नैगमनय है। जैसे, आज के दिन भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ था।

पारद्धा जा किरिया पयणविहाणादि कहइ जो सिद्धा।
लोए य पुच्छमाणे तं भण्णइ वट्टमाणणयं ॥34॥

अर्थ- जो प्रारम्भ की गई पकाने आदि की क्रिया को लोगों के पूछने पर सिद्ध या निष्पन्न कहना है वह वर्तमान नैगमनय है।

णिप्पण्णमिव पयंपदि भाविपयत्थं णरो अणिप्पण्णं।
अप्पत्थे जह पत्थं भण्णइ सो भावि णइगमोत्ति णओ ॥35॥

अर्थ- जो अनिष्पन्न भावि पदार्थ को निष्पन्न की तरह कहता है उसे भावि नैगमनय कहते है जैसे अप्रस्थ को प्रस्थ कहना।

अवरे परमविरोहे सव्वं अत्थित्ति सुद्धसंगहणो।
होई तमेव असुद्धो इगजाइविसे सगहणेण ॥36॥

अर्थ- संग्रह नय के दो भेद हैं- शुद्ध संग्रहनय और अशुद्ध संग्रह नय। शुद्ध संग्रहनय में परस्पर में विरोध न करके सत् रुप से सबका ग्रहण किया जाता है और जो नय सत् रुप से ग्रहण पदार्थ की किसी एक जाति विशेष को ग्रहण करता है उसे अशुद्ध संग्रहनय कहते है।

जं संगहेण गहियं भेयइ अत्थं असुद्ध सुद्धं वा।
सो ववहारो दुविहो असुद्धसुद्धत्थभेयकरो ॥37॥

अर्थ- जो संग्रहनय के द्वारा गृहीत शुद्ध अथवा अशुद्ध अर्थ का भेद करता है वह व्यवहारनय है। उसके भी दो भेद है- अशुद्ध अर्थ का भेद करने वाला और शुद्ध अर्थ का भेद करने वाला।

जो एयसमयवट्टी गिह्णइ दव्वे धुवत्तपज्जाओ।
सो रिउसुत्तो सुहुमो सव्वं पि सदं जहा खणियं ॥38॥

मणुबाइयपज्जाओ मणुसुत्ति सगठ्ठिदीसु बट्टंतो।
जो भणइ तावकालं सो थूलो होइ रिउसुत्तो ॥39॥

अर्थ- जो द्रव्य में एक समयवर्ती अध्रुवपर्याय को ग्रहण करता है उसे सूक्ष्म ऋजु सूत्र नय कहते है। जैसे सभी शब्द क्षणिक हैं और जो अपनी स्थितिपर्यन्त रहने वाली मनुष्य आदि पर्याय को उतने समय तक (पर्याय स्थिति) एक मनुष्य रुप से ग्रहण करता है वह स्थूल ऋजुसूत्र नय है।

जो वट्टणं च मण्णइ एयट्ठे भिण्णलिङ्गमाईणं।
सो सद्दणओ भणिओ णेओ पुस्साइयाण जहा ॥40॥

अहवा सिद्ध सद्दे कीरइ जं किंपि अत्थववहरणं।
तं खलु सद्दे विसयं देवो सद्देण जह देवो ॥41॥

अर्थ- जो नय एक अर्थ में भिन्न लिंग आदि वाले शब्दों की प्रवृत्ति को स्वीकार नहीं करता उसे शब्द नय कहते हैं। जैसे पुष्य आदि शब्दों में लिंग भेद होने से अर्थ भेद जानना चाहिए।

अथवा सिद्ध शब्द में जो कुछ अर्थ का व्यवहार किया जाता है वह शब्दनय का विषय है जैसे देव शब्द से देव अर्थ लिया जाता है।

सद्दारूढो अत्थो अत्थारूढो तहेव पुण सद्दो।
भणइ इह समभिरूढो जह इंद पुरंदरो सक्के ॥42॥

अर्थ- जो अर्थ को शब्दारूढ़ और शब्द को अर्थारुढ़ कहता है वह समभिरुढ़ नय है जैसे इन्द्र, शक्र और पुरन्दर।

जं जं करेइ कम्मं देही मणवयणकायचिठ्ठाहिं।
तं तं खु णामजुत्तो एवंभूओ हवे स णओ ॥43॥

अर्थ- जीव मन, वचन, और काय की चेष्टा से जो-जो क्रिया करता है उस-उस नाम से वह युक्त होता है। यह एवंभूत नय का स्वरूप जानना चाहिये।

पढमतिया दव्वत्थी पज्जयगाही य इयर जे भणिया।
ते चदु अत्थपहाणा सद्दपहाणा हु तिण्णियरा ॥44॥

अर्थ- पहले के तीन नय द्रव्यार्थिक है बाकी के नय पर्याय को ग्रहण करते है। प्रारम्भ के चार नय अर्थ प्रधान है और शेष तीन नय शब्द प्रधान है।

पण्णवणभाविभूदे अत्थे जो सो हु भेयपज्जाओ।
अह तं एवंभूदो संभवदो मुणह अत्थेसु ॥45॥

अर्थ- इस गाथा का अर्थ स्पष्ट नहीं है। संभव भावार्थ यह प्रतिभासित होता है कि वर्तमान, भूत और आगामी प्रत्येक समय की पर्यायों में भेद है। एवंभूत यह भेद स्वीकार करता है।

गुणगुणिपज्जयदव्वे कारयसब्भावदो य दव्वेसु।
सण्णाईहि य भेयं कुण्णइ सब्भूयसुद्धियरो ॥46॥

अर्थ- शुद्ध सद्भूत व्यवहार नय गुण और पर्याय के द्वारा द्रव्य में तथा कारक भेद से द्रव्यों में संज्ञा आदि के द्वारा भेद करता है।

दव्वाणं खु पएसा बहुगा ववहारदो य इक्केण।
अण्णेय य णिच्छयदो भणिया का तत्थ खलु हवे जुत्ती ॥47॥

अर्थ- एक आचार्य ने व्यवहार नय से द्रव्यों के बहुत प्रदेश कहे है। अन्य आचार्य ने निश्चय नय से द्रव्य के बहुत प्रदेश कहे हैं। इसमें क्या युक्ति है।

तदुच्यते-

व्यवहाराश्रयाद्यस्तु संख्यातीतप्रदेशवान्।
अभिन्नात्मैकदेसित्वादेक देशोऽपि निश्चयात् ॥

कहा भी है- व्यवहार नय के आश्रय से जो असंख्यात प्रदेशी है वही निश्चयनय से अभिन्न एक आत्म रूप होने से एक प्रदेशी भी है।

अणुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा।
असमुहदो ववहारा णिच्चयणयदो असंखदेसो वा ॥48॥

अर्थ- व्यवहारनय से आत्मा संकोच-विस्तार गुण के कारण समुद्धात अवस्था के अतिरिक्त शेष सब अवस्थाओं में प्राप्त छोटे या बड़े निज शरीर के बराबर है और निश्चयनय से असंख्यात प्रदेश वाले लोकाकाश के बराबर है।

एयपदेसे दव्वं णिच्छयदो भेयकप्पणारहिदा।
संभूएणं बहुगा तस्स य ते भेयकप्पणासहिए ॥49॥

अर्थ- भेद कल्पना रहित निश्चयनय से द्रव्य एक प्रदेशी है और भेद कल्पना सहित सद्भूत व्यवहारनय से बहुत प्रदेशी है।

अण्णेसिं अण्णगुणा भणइ असब्भूय तिविहभेदेवि।
सज्जाइइयरमिस्सो णायव्वो तिविहभेदजुदो ॥50॥

अर्थ- जो अन्य के गुणों को अन्य का कहता है वह असद्भूत व्यवहारनय है। उसके तीन भेद है सजाति, विजाति और मिश्र तथा उनमें से भी प्रत्येक के तीन-तीन भेद हैं।

दव्वगुणपज्जयाणं उवयारं होइ ताण तत्थेव।
दव्व गुणपज्जया गुणे दवियपज्जया णेया ॥51॥

पज्जाये दव्वगुणा उवयरियव्वा हु बंधसंजुत्ता।
संबंधे संसिलेसो णाणीणं णेयमादीहिं ॥52॥

अर्थ- द्रव्य में द्रव्य का, गुण में गुण का, पर्याय में पर्याय का, द्रव्य में गुण और पर्याय का, गुण में द्रव्य और पर्याय का और पर्याय में द्रव्य और गुण का उपचार करना चाहिए। यह उपचार बन्ध से संयुक्त अवस्था में तथा ज्ञानी का ज्ञेय आदि के साथ सम्बन्ध होने पर किया जाता है।

एइंदियादिदेहा णिच्चत्ता जेवि पोग्गले काये।
ते जो भणेइ जीवो ववहारो सो विजातीओ ॥53॥

अर्थ- पौद्गलिक काय में जो एकेन्द्रिय आदि के शरीर बनते हैं उन्हें जो जीव कहता है वह विजातीय असद्भूत व्यवहार नय है।

मुत्तं इह मइणाणं मुत्तिमदव्वेण जण्णियं जह्मा।
जइ णहु मुत्तं णाणं ता कह खलियं हि मुत्तेण ॥54॥

अर्थ- मतिज्ञान मूर्तिक है क्योंकि मूर्तिक द्रव्य से पैदा होता है यदि मतिज्ञान मूर्त न होता तो मूर्त के द्वारा वह स्खलित क्यों होता।

दठ्ठूणं पडिबिंबं भवदि हु तं चेव एस पज्जाओ।
सज्जाइअसब्भूओ उवयरिओ णिययजातिपज्जाओ॥55॥

अर्थ- प्रतिबिम्ब को देखकर यह वही पर्याय है जो ऐसा कहता है वह स्वजाति पर्याय में स्वजाति पर्याय का उपचार करने वाला असद्भूत व्यवहार नय है।

णेयं जीवमजीवं तं पिय णाणं खु तस्स विसयादो।
जो भणइ एरिसत्थं ववहारो सो असब्भूदो ॥56॥

अर्थ- ज्ञेय जीव भी है और अजीव भी है ज्ञान के विषय होने से उन्हें जो ज्ञान कहता है, वह असद्भूत व्यवहार नय है।

परमाणु एयदेसी बहुप्पदेसी पयंपदे जो दु।
सो ववहारो णेओ दव्वे पज्जायउवयारो ॥57॥

अर्थ- जो एक प्रदेशी परमाणु को बहुप्रदेशी कहता है उसे द्रव्य में पर्याय का उपचार करने वाला असद्भूत व्यवहारनय जानना चाहिए।

रूवं पि भणइ दव्वं ववहारो अण्णअत्थसंभूदो।
सेओ जह पासाणो गुणेसु दव्वाण उवयारो ॥58॥

अर्थ- अन्य अर्थ में होने वाला व्यवहार रूप को भी द्रव्य कहता है जैसे सफेद पत्थर। यह गुणों में द्रव्य का उपचार है।

णाणं पि हि पज्जायं परिणममाणं तु गिह्णए जो हु।
ववहारो खलु जंपइ गुणेसु उवरियपज्जाओ ॥59॥

अर्थ- परिणमन शील ज्ञान को पर्याय रुप से कहा जाता है इसे गुणों में पर्याय का उपचार करने वाला असद्भूत व्यवहारनय कहते है।

दठ्ठूण थूलखंधो पुग्गलदव्वोत्ति जंपए लोए।
उवयारो पज्जाए पोग्गलदव्वस्स भणइ ववहारो ॥60॥

अर्थ- स्थूल स्कन्ध को देखकर लोक में उसे 'यह पुद्गल द्रव्य है' ऐसा कहते है इसे पर्याय में पुद्गल द्रव्य का आरोप करने वाला व्यवहार नय कहते है।

दठ्ठूण देहठाणं वण्णंतो होई उत्तमं रूवं।
गुणउवयारो भणिओ पज्जाए णत्थि संदेहो ॥61॥

अर्थ- शरीर के आकार को देखकर उसका वर्णन करते हुए कहना कि कैसा उत्तम रूप है, यह पर्याय में गुण का उपचार है इसमें सन्देह नहीं।

सद्दत्थ पच्चयादो संतो भणिदो जिणेहि ववहारो।
जस्स ण हवेइ संतो हेऊ दोण्हंपि तस्स कुदो ॥62॥

चइगइ इह संसारो तस्स य हेऊ सुहासुह कम्मं।

जइ तं मिच्छा तो किह संसारो संखमिव तस्समये ॥63॥

एइंदियादिदेहा जीवा ववहारदो दु जिणदिठ्ठा।
हिंसादिसु जदि पावं सव्वत्थो किं ण ववहारो ॥64॥

अर्थ- जिनेन्द्र देव ने सर्वत्र पर्याय रुप से व्यवहार को सत् कहा है। जो व्यवहार को सत् नहीं मानता उसके मत में संसार और मोक्ष के कारण कैसे बनेंगे?

यह चार गति रुप संसार है उसके हेतु शुभ और अशुभ कर्म है। यदि वह मिथ्या है तो उसके मत में सांख्य की तरह वह संसार कैसे बनेगा?

जिनेन्द्र देव ने व्यवहार नय से एकेन्द्रिय आदि जीवों के शरीर को जीव कहा है। यदि उनकी हिंसा करने में पाप है तो सर्वत्र व्यवहार क्यों नहीं मानते?

बंधे वि मुक्खहेऊ अण्णो ववहारदो ये णायव्वा।
णिच्छयदो पुण जीवो भणिओ खलु सव्वदरसीहिं ॥65॥

अर्थ- व्यवहार नय से बन्ध की तरह मोक्ष का हेतु भी अन्य जानना चाहिए। किन्तु निश्चयनय से सर्वदर्शी भगवान् ने निजभाव को बन्ध और मोक्ष का कारण कहा है।

जो चेव जीवभावो णिच्छयदो होई सव्वजीवाणं।
सो चिय भेदुवयारा जाण फुडं होइ ववहारो ॥66॥

अर्थ- निश्चय नय से जो जीव स्वभाव सब जीवों में होता है भेदोपचार से वह भी व्यवहार है ऐसा स्पष्ट जानों।

भेदुवयारो णियमा मिच्छादिठ्ठीण मिच्छरूवं खु।
सम्मे सम्मो भणिओ तेहि दु बंधो व मुक्खो वा ॥67॥

अर्थ- मिथ्यादृष्टियों का भेद रूप उपचार तथा निश्चय मिथ्या होता है और सम्यग्दृष्टियों का सम्यक् होता है। उन्हीं से बन्ध अथवा मोक्ष होता है।

ण मुणइ वत्थुसहावं अह विवरीयं खु मुणह णिरवेक्खं।
तं इह मिच्छाणाणं विवरीयं सम्मरूवं खु ॥68॥

अर्थ- जो वस्तु-स्वरुप को नहीं जानता या निरपेक्ष रुप से विपरीत जानता है वह मिथ्या ज्ञान है और उससे विपरीत सम्यग्ज्ञान है।

णो उवयारं कीरइ णाणस्स हु दंसणस्स वा णेए।
किह णिच्छित्तीणाणं अण्णेसिं होइ णियमेण ॥69॥

अर्थ- ज्ञान और दर्शन का ज्ञेय में उपचार नहीं किया जाता। तब नियम से अन्य पदार्थों के निश्चय को ज्ञान कैसे कहा जा सकता है?

उवराया अवयारं सच्चासच्चेसु उहयअत्थेसु।
सज्जाइइयरमिस्सो उवयरिओ कुणइ ववहारो ॥70॥

अर्थ- सत्य, असत्य और सत्यासत्य पदार्थों में तथा स्वजातीय, विजातीय और स्वजाति-विजातीय पदार्थों में जो एक उपचार के द्वारा दूसरे उपचार का विधान किया जाता है उसे उपचरितासद्भूत व्यवहारनय कहते है।

देसवई देसत्थो अत्थवणिज्जो तहेव जंपंतो।
मे देसं मे दव्वं सच्चासच्चंपि उभयत्थं ॥71॥

अर्थ- देश का स्वामी कहता है कि यह देश मेरा है, या देश में स्थित व्यक्ति कहता है कि देश मेरा है या व्यापारी अर्थ का व्यापार करते हुए कहता है कि मेरा धन है तो यह क्रमशः सत्य, असत्य और सत्यासत्य उपचरित असद्भूत व्यवहार नय है।

पुत्ताइबंधुवग्गं अहं च मम संपयाइ जंपंतो।
उवयारासब्भूओ सजाइदव्वेसु णायव्वो ॥72॥

अर्थ- पुत्र आदि बन्धु वर्ग रूप मैं हूँ या यह सब सम्पदा मेरी है इस प्रकार का कथन स्वजाति उपचरित असद्भूत व्यवहार नय है।

आहरणहेमरयणं वत्थादीया ममत्ति जंपंतो।
उवयार असब्भूओ विजादिदव्वेसु णायव्वो ॥73॥

अर्थ- आभरण, सोना, रत्न और वस्त्र आदि मेरे हैं, ऐसा कथन विजाति द्रव्यों में उपचरित असद्भूत व्यवहारनय है।

देसं च रज्ज दुग्गं एवं जो चेव भणइ मम सव्वं।
उहयत्थे उपयरिओ होई असब्भूयववहारो ॥74॥

अर्थ- जो देश की तरह राज्य, दुर्ग, आदि अन्य मिश्र सजाति-विजाति द्रव्यों को अपना कहता है उसका यह कथन सजाति-विजाति उपचरित असद्भूत व्यवहारनय है।

एयंते णिरवेक्खे णो सिज्झइ विविहभावगं दव्वं।
तं तह वयणेयंते इदि बुज्झइ सियअणेयंतं ॥75॥

अर्थ- निरपेक्ष एकान्तवाद में अनेक भाव रुप द्रव्य की सिद्धि नहीं होती। इसी तरह एकान्त निरपेक्ष अनेकान्तवाद में भी तत्त्व निर्णय नहीं होता है इसलिए कथंचित् अनेकान्तवाद को जानना चाहिए।

ववहारादो बंधो मोक्खो जह्मा सहावसंजुत्तो।
तह्मा कर तं गउणं सहावमाराहणाकाले ॥76॥

अर्थ- व्यवहार से बन्ध होता है और स्वभाव में लीन होने से मोक्ष होता है इसलिए स्वभाव की आराधना के समय व्यवहार को गौण करना चाहिए।

जह रससिद्धो वाई हेमं काऊण भुंजये भोगं।
तह णय सिद्धो जोई अप्पा अणुहवउ अणवरयं ॥77॥

अर्थ- जैसे रस सिद्ध वैध पारदादि के योग से स्वर्ण बनाकर भोगों का अनुभव करता है, उसी प्रकार नय सिद्ध (नय निपुण) योगी निरन्तर आत्म-अनुभव करता है।

मोक्खं च परमसोक्खं जीवे चारित्तसंजुदे दिठ्ठं।
वट्टइ तं जइवग्गे अणवरयं भावणालीणे ॥78॥

अर्थ- चारित्र से युक्त जीव में परम सौख्य रूप मोक्ष पाया जाता है और वह चारित्र निरन्तर भावना में लीन मुनि समुदाय में पाया जाता है।

रायाइभावकम्मा मज्झ सहावा ण कम्मजा जह्मा।
जो संवेयणगाही सोहं णादा हवे आदा ॥79॥

अर्थ- रागादि भावकर्म मेरे स्वभाव नहीं है क्योंकि वे तो कर्मजन्य है। मैं तो ज्ञाता आत्मा हूँ जो स्वसंवेदन के द्वारा जाना जाता हूँ। अर्थात् इस प्रकार भावना निरन्तर भाने वाले मुनियों में चारित्र पाया जाता है।

परभावादो सुण्णो संपुण्णो जो हु होइ णियभावे।

जो संवेयणगाही सोहं णादा हवे आदा ॥80॥

अर्थ- जो परभाव से सर्वथा रहित सम्पूर्ण स्वभाव वाला है, वही मैं ज्ञाता आत्मा हूँ तथा स्वसंवेदन से जिसका ग्रहण होता है।

जडसब्भावो णहु मे जह्मा तं जाण भिण्णजडदव्वे।
जो संवेयणगाही सोहं णादा हवे आदा ॥81॥

अर्थ- मेरा जड़ स्वभाव नहीं है क्योंकि जड़ स्वभाव तो अचेतन द्रव्य में कहा है। मैं तो वही ज्ञाता आत्मा हूँ जो स्वसंवेदन के द्वारा ग्रहण किया जाता है।

मज्झ सहावं णाणं दसणं चरणं न किंपि आवरणं।
जो संवेयणगाही सोहं णादा हवे आदा ॥82॥

अर्थ- मेरा स्वभाव ज्ञान, दर्शन, चारित्र है कोई भी आवरण मेरा स्वभाव नहीं है। इस प्रकार मैं वही ज्ञाता आत्मा हूँ जो स्वसंवेदन के द्वारा ग्रहण किया जाता है।

घातिचउक्कं चत्तं संपत्तो परमभावसब्भावं।
जो संवेयणगाही सोहं णादा हवे आदा ॥83॥

अर्थ- घातिया चतुष्क को नष्ट करके परम पारिणामिक स्वभाव को प्राप्त मैं वही ज्ञाता आत्मा हूँ जो स्वसंवेदन के द्वारा ग्रहण किया जाता है।

णियपरमणाणसंजणिय जोयिणो चारुचेयणाणंदं।
जइया तइया कीलइ अप्पा अवियप्पभावेण ॥84॥

अर्थ- जब आत्मा निर्विकल्प भाव से परिणमन करता है तब योगी के निज ज्ञान से उत्पन्न श्रेष्ठ आत्मानंद होता है।

लवणं व एस भणियं णयचक्कं सयलसत्थसुद्धियरं।
सम्भाविसुयं मिच्छा जीवाणं सुणयमग्गरहियाणं ॥85॥

अर्थ- जैसे लवण सब व्यंजनों को शुद्ध कर देता है- सुस्वाद बना देता है वैसे ही समस्त शास्त्रों की शुद्धि के कर्त्ता इस नयचक्र को कहा है। सुनय के ज्ञान से रहित जीवों के लिए सम्यक् श्रुत भी मिथ्या हो जाता है।

जइ इच्छइ उत्तरिदुं अज्झाणमहोवहिं सुलीलाए।
तो णादुं कुणह मइं णयचक्के दुणयतिमिरमत्तण्डे ॥86॥

अर्थ- यदि लीला मात्र से अज्ञान रुपी समुद्र को पार करने की इच्छा है तो दुर्नयरुपी अन्धकार के लिए सूर्य के समान नयचक्र को जानने में अपनी बुद्धि लगाओ।

इति लघुनयचक्रं श्री देवसेनकृतं समाप्तम्।

